समकालीन चित्रकला में विकास भट्टाचार्य का योगदानः एक अध्ययन

डॉ मनोज कुमार
कला अध्यापक
राजकीय उच्च माध्यमिक बाल विद्यालय,
22–बी, देव नगर, नई दिल्ली
ईमेलः manojgbss0@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:
Received: 22-05-26
Approved: 15-06-26

डॉ मनोज कुमार

समकालीन चित्रकला में विकास भट्टाचार्य का योगदानः एक अध्ययन

Artistic Narration 2026,
Vol. XVII, No. 1,
Article No.25 Pg.212-217

Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/artistic-narration-june-2026-vol-xvii-no1

Referred by:
DOI:*https://doi.org/10.31995/an.2026.v17i01.025*

सारांश

बंगाल के समकालीन चित्रकारों में विकास भट्टाचार्य का स्थान अत्यंत विशिष्ट माना जाता है। उनकी कला की सबसे बड़ी विशेषता सामाजिक यथार्थ की सच्ची और संवेदनशील अभिव्यक्ति है। उन्होंने अपने चित्रों में समाज की विडंबनाओं, विशेषकर नारी जीवन की पीड़ा, असुरक्षा, आर्थिक संघर्ष और मानसिक यातना को गहराई से प्रस्तुत किया। उनकी कला केवल सौंदर्य प्रदर्शन तक सीमित नहीं रही, बल्कि समाज के भीतर छिपी क्रूरता, अकेलेपन और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करने का माध्यम बनी। विकास भट्टाचार्य ने अपनी कला यात्रा की शुरुआत यथार्थवादी तथा अतियथार्थवादी शैली से की। उनकी प्रसिद्ध "डॉल श्रृंखला" में गुड़िया के माध्यम से स्त्री और बालिका की असहाय स्थिति को चित्रित किया गया है। ये चित्र दर्शकों को हिंसा, भय और सामाजिक असमानता पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। उनके चित्रों में कल्पना और यथार्थ का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। वे सामान्य जीवन के दृश्य को भी नए अर्थ और गहन संवेदना प्रदान करते थे। उनकी कला का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि वे चित्रों को केवल सजावटी वस्तु नहीं मानते थे, बल्कि दर्शक और चित्र के बीच संवाद स्थापित करना चाहते थे। वे मानते थे कि कला मनुष्य और उसके परिवेश के संबंधों से जन्म लेती है। इसलिए उनके चित्रों में आम लोगों का जीवन, संघर्ष, गरीबी, राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक बदलाव प्रमुख विषय बने। "ट्यूबवेल का उद्‌घाटन" जैसे चित्रों में उन्होंने समाज की विडंबना और दिखावटी राजनीति पर तीखा व्यंग्य किया। विकास भट्टाचार्य ने चित्रांकन में यथार्थवाद के साथ–साथ विकृतिकरण (Distortion) का भी प्रभावशाली प्रयोग किया। उदाहरणस्वरूप "विधवा" चित्र में उन्होंने बड़े हाथ और छोटे पैर बनाकर यह संकेत दिया कि विधवा स्त्री का जीवन केवल घरेलू श्रम तक सीमित कर दिया गया है। इस प्रकार उनकी कला केवल दृश्य प्रस्तुति नहीं बल्कि गहरे सामाजिक संदेश का माध्यम बन जाती है।

मूल शब्द

विकास भट्टाचार्य, समकालीन चित्रकला, यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, डॉल श्रृंखला, नारी संवेदना, सामाजिक यथार्थ, विकृतिकरण, मानवीय पीड़ा, ललित कला अकादमी

बंगाल के समकालीन चित्रकारों में विकास भट्टाचार्जी की जगह अलग होने की एक ही वजह है समकालीन चित्रकला में महत्वपूर्ण योगदान में अपनी अभिव्यक्ति की सच्चाई। वह जो कहना चाहते हैं। उसमें नारी सौन्दर्य की सामाजिक व आर्थिक दशा की अदम्य छटपटाहट है। विकास भट्टाचार्जी ने अपनी कला यात्रा यथार्थवादी व अतियथार्थवादी षैली के चित्रांकन से शुरू की थी। यह साठ–सत्तर के दशक तक की बहुप्रचलित प्रयुक्ति थी क्योंकि यह शैली विषयों, आकारों को निर्बन्ध और रचनाकारों को स्वच्छन्द हो जाने की संस्तुति के साथ कभी–कभी उच्छृंखल हो जाने की भी अनुमति प्रदान करती थी। इसलिए एक चित्रकार अपने मनोस्वप्न में या अपनी कल्पनाओं में डूबकर, कुछ न कुछ टोह–टटोलकर ले ही आता था। इसमें प्रयोगों की छूट तो थी ही, मिश्रित माध्यमों और अनुप्रयोगों की भी इजाजत थी। इसलिए 'डाल श्रृंखला' के अन्तर्गत बने चित्रों में कल्पनाशील विकास के लिए पर्याप्त अवकाश था कि वे कुछ अविश्वसनीय दृश्यों का भी अन्य चित्रकारों की तरह सृजन करते। लेकिन पटल और प्रयोगों में आवश्यक सामंजस्य रखकर उन्होनें अपने समय, समाज एवं सन्दर्भों को जिस तरह चित्रमुखर किया, वह उन जैसा प्रतिश्रुत कलाकार ही कर सकता था। एक बहुत बड़ी दुनिया और महानगरीय विस्तार में एक मासूम गुड़िया की खामोशी जिस हाहाकार को प्रतीकित कर रही होती है, वह अप्रत्याशित है।[1] एक परिचित दृश्य पात्र या प्रसंग को सर्वथा एक नया आयाम देना और अपनी अनुपस्थिति को भी चाक्षुष बनाए रखना यह विकास की तिलिस्मी तूलिका ही नहीं उनके प्रषान्त व्यक्तित्व का भी निराला अन्दाज रहा। इस मुक्ति या प्रस्तुति के कौशल ने विकास को जबर्दस्त लोकप्रियता दिलाई। उनके चित्रों की प्रदर्शनी देनखेवालों या पत्र पत्रिकाओं में अथवा अलबम/कैटेलॉग आदि में मुद्रित होने वाले चित्रों के प्रति विशेष आग्रह रखने वाले प्रशंसकों की कभी कमी नहीं रही। विकास ने भी शायद यह भाँप लिया था कि गैलरियाँ या कलादीर्घाएँ कभी–कभी चित्रकार की आम पहुँच को सीमित कर देती हैं। वस्तुतः व्यापक और वृहत्तर लोकचित्र ही कलाकार का अभय आश्रय होता है। रवि वर्मा, नन्दलाल बसु, रामकिंकर और जामिनी या–जैसे उदाहरण तो उनके सामने थे ही। इसलिए लोक से विषय और अंतर से प्रेरणा लेकर उन्होंने चित्रकला के अनुशासन को क्लास और मास दोनों के लिए एक समान ग्राह्य बनाने का महत्वपूर्ण उपक्रम किया। उनके चित्रों में विषय–चयन, रंगन्यास (पैटर्न) और शैलियों का वैविध्यपूर्ण विस्तार किसी भी दर्शक को या उनके प्रसंशक को चमत्कृत कर सकता है। उदाहरण के लिए 'टयूबवेल का उद्घाटन' वाला चित्र हमारी सामाजिक बिडम्बना को उकेरता है, जिसमें आम लोगों की भीड़ के सामने उद्घाटनकर्ता गले में हार डाले फोटो खिंचवाने को बेचैन है। उत्सुकतावश यह सघन क्षण उस सामाजिक याथार्थ को ही निरूपित करना है[2], उस पूरे परिदृश्य में स्थानीय नेता और बेताब लोगों के हाव–भाव के साथ हैंडपम्प की सनसनाहट भी जैसे शामिल हो गई है।

प्रतिकृति या शबीह के अंकन में विकास ने प्रचलित रंगों या प्रविधियों का निशेध तो नहीं किया लेकिन उन्होंने कैनवस की सीमाओं को भी नहीं स्वीकार। पटल (या आधार) कभी–कभी अपनी अकारण उपस्थिति के चलते भी अवरोधक बन जाते हैं और रंगों की सघनता (विशेषकर ऑयल और एक्रिलिक रंगों के प्रयोग) के कारण वांछित ढंग से प्रतिबिम्बित (रिफ्लेक्ट) नहीं होते। इसलिए विकास जैसे चित्रकारों के लिए व्यक्ति विशेष में पाए जाने वाले आन्तरिक भाव या उनकी अन्तर्वृत्ति को उद्घाटित करने में कठिनाई पेश आती है। इनमें होने वाली तनिक भी उतावली या आग्रह का अतिरेक व्यक्ति की प्रतिकृति की आन्तरिक पहचान को नष्ट कर सकता है। इसलिए किसी भी अतिरेक से बचते हुए एक कलाकार को अभिप्रेत व्यक्ति की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता भी अर्जित करनी पड़ती है। मुझे ऐसा लगता है कि शबीहों के अंकन में यथार्थपरक (फोटोग्राफिक) और अभिव्यंजनापरक (इम्प्रेशनिस्टिक) दोनों के तरल और विरल संयोजन सामर्थ्य से विकास 'पोर्टेचर' विधा में एक

नया आयाम जोड़ने में सक्षम हुए हैं। इसलिए उनके बहुत से व्यक्ति चित्र और औपचारिक प्रतिकृतियाँ (नन्दलाल बसु, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रामकिंकर बैज, सत्यजित राय, बिनोद बिहारी मुखर्जी आदि) चाहे जिस विधा में उकेरी गई हों बेहद प्रभावी हैं। ऐसे कई महत्वपूर्ण लोगों एवं हस्ताक्षरों यथा–इन्दिरा गाँधी, समरेश बसु, उस्ताद अमजद अली खाँ आदि उनकी विशिष्ट शैली ही नहीं, आत्मीय संस्पर्श से दीप्त हैं।

'इन्दरा गाँधी' की प्रतिकृति उनकी अमानवीय हत्या के बाद बनाई गई थी जिसमें रंगों और छाया प्रकाश का अद्‌भतु रचाव है। इन्दिरा गाँधी के चेहरे का निचला हिस्सा अस्पष्ट और धुँधला रखा गया है। उनके गले से झूलती अड़हुल (जवाकुसुस) फूलों की माला–अनिर्वचनीय ढंग से एक अप्रत्याशित बलिदान या शहादत को व्यंतिज कर रही है। इस शबीह में एक मुखर होता मुख भी अस्पष्ट है लेकिन वह कहीं अधिक भावाभिव्यंजक बन गया है। इसी तरह समरेश बसु की प्रतिकृति एक रचनाकार की वेदना और मानवता के प्रति उसकी गहरी सम्वदे ना का उसकी स्निग्ध दृष्टि व्यंजित करती प्रतीत होती है। कई आदिवासियों, संथाली औरतों के हाव–भाव, रूप विन्यास आदि के साथ विकास उनकी आँखों की चितवन को जितनी अन्तरंगता और हार्दिकता से चित्रित करते हैं वह सचमुच विस्मित करने वाला है।[3]

विकास की सफल कला यात्रा बांग्ला की सुप्रतिष्ठित एवं सचित्र साप्ताहिक पत्रिका 'देश' से अलग कर नहीं देखी या रखी जा सकती। 'देश' के सामान्य एवं विशेष अंकों में प्रतिष्ठित एव समकाली कलाकारों के कृतित्व और उनकी उपलब्धियों की चर्चा के साथ चित्र–प्रदर्शनियों पर कला समीक्षकों की टिप्पणी भी, नियमित स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित होती है। इस पत्रिका को उसके मुखपृष्ठ अपनी कल्पनाशीलता और प्रस्तुति के लिए भी संग्रहणीय बना देते हैं। ऐसे चित्रों को केन्द्र में रखकर समकालीन एंव अग्रणी चित्रकारों की निर्मितियों का मूलयांकन किया जा सकता है और जब बात 'देश' की होगी तो इसके प्रकाशन की भी होगी क्योंकि बंगाल के कई प्रतिष्ठित और पेशेवर चित्रकार तथा कला समीक्षक इस प्रकाशन गृह से सम्बद्ध रहे हैं जिसमें विकास का नाम अनिवार्यर्त : जुड़ा रहा।[4]

इसके बाद विकास भट्टाचार्जी आगे बढ़ते गये। इसके बाद सन् 1971–72 में विकास 'डाल श्रृंखला' लेकर आये। इस श्रृंखला की गुड़ियाएँ (डॉल) गुड़िया है या बच्ची या फिर गुड़िया के समान बच्ची जो असहाय है और इस बात से अनजान कि उनके चारों ओर के माहौल में क्रूरता और हिंसा का जाल बिछा है, जो न जाने कब उसे अपने शिकंजे में कस ले। इन चित्रों ने दर्शक को यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया। किया कि हम कैसे हिंसक समाज में जी रहे हैं। इसके बाद उनकी कई महत्वपूर्ण एकल प्रदर्शनियाँ कलकत्ता, जमेशदपुर, मुम्बई और दिल्ली में हुई। ''भारत में पहली अन्तर्राष्ट्रीय त्रैवार्षिकी (त्रिनाले) से लेकर चौथी त्रैवार्षिकी तक में उन्होंने बराबर भागीदारी की। सन् 1969 में पेरिस के बाइनले (द्विवार्षिकी) में उनके चित्रों को स्थान प्राप्त हुआ। ललित कला अकादमी द्वारा युगोस्लाविया, रोमानिया, चेकोस्लोवाकिया और हंगरी में आयोजित प्रदर्शनी में उनके चित्र सम्मिलित रहे।''[5] उनके चित्र देश–विदेश की अनेक प्रतिष्ठित प्रदर्शनियों और चित्र गैलरी में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं तथा मान–सम्मान और पुरस्कार पा चुके हैं। ललित कला अकादेमी ने उन्हें सन् 1971 और 1972 में राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया।

विकास भट्टाचार्जी अपनी कला को सामाजिक यथार्थ से जोड़कर चलते हैं इसलिए अपने आस–पास की जिन्दगी और दिन–प्रतिदिन के अनुभव, संवेग, विचार उनके आत्म प्रत्यक्षीकृत हो चित्रों का आकार ग्रहण करते हैं। उनके विचार से कला, मनुष्य और उसके परिवेश के अन्तरसम्बन्धों के सन्दर्भों से ही आरम्भ होती

है और उसी के साथ समाप्त होती है।[6]

विकास का विश्वास यथार्थवादी चित्रण में रहा है इसीलिए उनके चित्र यथातथ्य चित्रण में फोटो जैसे रहे हैं, लेकिन उन्होनें अपने कथ्य के अनुरूप आकृतियों का विरूपीकरण भी किया है जैसे, उनके एक चित्र में बंगाल की 'विधवा का चित्र' है। इस चित्र में उसके हाथ अनुपात में बड़े और पैर छोटे हैं।

इसके द्वारा उन्होंने यह कहने की कोशिश की है कि विधवा के लिए घर में काम ही काम है इसलिए उसके हाथ बड़े होने चाहिए और पैर इसलिए छोटे हैं कि उसे घर से बाहर जाने पर मनाही है। विधवा की आकृति दर्शक के मन पर गहरा विषाद छोड़ती है। इसलिए जहाँ भी जरूरत पड़ी है उन्होनें विरूपीकरण का सहारा लिया। है। ''यथार्थवादी चित्रण के सन्दर्भ में उन्होनें स्वयं को 'सुरयर्लिज्म' अतियथार्थवाद के पास पाया है। उनका मानना है कि चित्र को दर्शक के साथ एक सम्वाद स्थापित करना चाहिए न कि चित्र के माध्यम से चित्रकार के विचारों का सम्प्रेषण।''[7] इसके लिए विकास चित्र के फ्रेम को एक द्वार की तरह इस्तेमाल करने के पक्षधर हैं ताकि द्वार से प्रवेश कर दर्शक उनकी गहन अनुभूतियों में, उन्होनें जिस तथ्य को खोजा है और मूलतः क्या है– उसमें सीधे–सीधे दाखिल हो सके।

विकास के कार्य में समय के साथ बदलाव आता रहा है इन सभी चित्र में यह बदलाव स्पष्ट रूप में परिलक्षित है। इसलिए वह पाते हैं कि चित्र को देखते हुए दर्शक संगीत के साम्राज्य, रंग और रेखाओं में प्रवेश कर जाता है। समय और उम्र के साथ विकास के चित्रों की विषय वस्तु में एक और बदलाव आया है। पहले जहाँ वह सत्ता, व्यवस्था और स्थितियों पर क्षुब्ध होकर एक नौजवान की तरह अपने चित्रों में व्यवस्था के विरोध में आक्रोश और प्रतिरोध को तीव्रता के साथ चित्रित करते थे, अब उन्हें उसी तरह का व्यवहार करना जरूरी नहीं लगता। ''उनका कहना है कि इसके इतर और भी भावनाएँ हैं, संवेग हैं जिनका चित्रण किया जाना कही अधिक उपयोगी है। प्रकृति, विविधता और अनन्तता एक चित्रकार के लिए व्यापक अवसर उपलब्ध कराती है जिन्हें, पकड़ने के लिए चित्रकार को एक सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है। अतः जरूरत उसे खोजने की है और उसे पाने की है। इसी सन्दर्भ में उनका कहना है कि पूर्व और पश्चिम के कलाकार इसी धरातल पर अलग–अलग दिखाई देते हैं क्योंकि पश्चिम के कलाकार आदमी से प्रेरणा लेने पर अधिक विश्वास करते हैं जब कि पूर्व के कलाकार हमेशा प्रकृति से प्रेरणा लेते रहे हैं। इस विषय में उनका कहना है कि प्रकृति मेरे लिए पथ प्रदर्शक और प्रेरणा स्त्रोत रही है।''[8]

''यूरोपीय इतिहास के इस यौवन–काल में वास्तुशिल्प तथा पेंटिग की कलापूर्ण–विज्ञान की धारणा का सांस्कृतिक परिदृश्य पर दबदबा रहा। यह महज संयोग नहीं था कि पुनर्जागरण काल के अधिकतर महत्वपूर्ण कलाकारों ने धार्मिक या धर्मनिरपेक्ष परिदृश्य या घटना के प्रभाव को उभारने के लिए वास्तुशिल्पीय अभिप्रायों का प्रयोग किया। ये अभिप्राय क्लासिकल ग्रीको–रोमन वास्तुशिल्प का पुर्नसृजन थे।''[9]

उदाहरण के लिए 'डामीनीको घिरलांदाइयों' अपनी कलाकृति 'एडोरेशन ऑफ द शेफर्ड' (1485) में दैवी उपस्थिति को संयुक्त क्रम में प्रस्तुत दो स्तंभों के माध्यम से उभारते हैं। बायीं ओर की पुनर्जागरण काल की लालित्यपूर्ण मेहराबें अंदरूनी कक्ष को अलग करती हैं जहाँ पुनर्जागरण काल के इटली में बाइबल–काल की घटना को बेहिचक घटते हुए दिखा गया है। पृष्ठभूमि में मध्यकालीन दुर्गों की गगनरेखा का गहन दृष्टिक्रम है। विकास भट्टाचार्जी की कृतियों में जो जकड़न का अहसास हमें होता है, पुनर्जागरण काल की कृतियों में पूर्णतया अनुपस्थिति है क्योंकि उस काल में उनके वैज्ञानिक, सागर यात्री तथा कलाकार विभिन्न

क्षेत्रों में नये आयामों को जन्म दे रहे थे। वास्तुशिल्पीय अभिप्राय फल–फूल रही नागरी संस्कृति के परिचायक हैं, ह्रासोन्मुखता के नहीं।

वास्तुशिल्पीय अभिप्राय के दृश्यात्मक महत्व को ध्यान में रखते हुए हम अब राफेल सांजियों की 'स्कूल आफ एथेन्स' (1508–11) तथा विकास की 'डाल सीरीज' पर एक साथ विचार करते हैं। लेकिन यहाँ मैं एक बात कह दूँ कि यह कलाकार के रूप में विकास भट्टाचार्जी तथा राफेल सांजियों के बीच तुलना कतई नहीं है।[10] हमारा आशय केवल दो विभिन्न संस्कृतियों में प्रयोग किये गये वास्तुशिल्पीय अभिप्रायों से है। इनमें से एक नये क्षितिजों का संधान कर रही है, जबकि दूसरी अंतिम साँसे गिन रही है।

यह गौर करने की बात है कि कोलकाता के अधिकांश कलाकार यथार्थ और आकृतिमॅलकता को आसानी से छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। विकास की दुनिया को समझने के लिए पिछले पचास साल के कोलकाता शहर और उसकी पुरानी स्मृतियों को समझना भी जरूरी है। विकास जब सिर्फ छह साल के थे, उनके पिता का निधन हो गया। मामा के घर वह पले–पढ़े। उस माहौल में उन्हें प्यार नहीं मिला। बचपन की खराब स्मृतियों ने विकास के भीतर गुस्सा पैदा किया–नफरत भी। एक बुनियादी किस्म की चिंता और आशंका का जो अंधेरा हमें विकास के विश्व में दिखाई देता है, उसके स्रोत उनके बचपन में भी हैं।

पचास के दशक में अपनी यथार्थवादी कृतियों के माध्यम से कला जगत में प्रख्यात हो जानेवाले चित्रकार विकास भट्टाचार्जी के जीवन और कृतित्व पर बहुत कुछ लिखा गया है। लेकिन उनके कार्यों को समय और समाज के सन्दर्भ में देखने का अपना अलग महत्व है। उनके कार्यों की पूरी विवेचना की है और दिखाया है कि किन–किन स्तरों पर विकास ने समकालीन भारतीय कला को समृद्ध किया और महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चित्रकार मकबूल फिदा हुसेन ने लिखा है। उन्होनें रेखांकित किया है कि ''बिकास यथार्थवादी चित्रकार हैं जिन्होंने उन स्त्रियों को उनके यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। जो शताब्दियों से दीवारों पर टँगी हैं और स्त्रियों के व्यक्तिचित्र की स्मृतियों को रूपायित किया है जो पुरुष प्रधान परिवारों के दरबार में सदियों पहले दाखिल हुई थीं। वह रहीं, उन्होंने प्रेम किया तथा अन्त में उसी को खो दिया। उन्होंने अपने आपपास एक ब्रह्माण्ड की रचना की, उसकी कठिन उद्यमों से रक्षा की लेकिन उसे भी खो दिया इस तरह विकास स्त्रियों में एक त्रिमूर्ति का रुपक बनाते हैं जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश की कल्पना है।''[11]

उनकी ये सभी कृतियाँ समालोचना का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है–विकास के कार्यों में समय, समाज तथा सामाजिक परिवर्तनों की खोज। जाहिर है, इसमें विकास की कृतियों का समाजशास्त्र तो आया ही है, उनका समूचा सांस्कृतिक विमर्श भी जगह पा सका है। इनकी लोकप्रियता का गवाह है। जब वर्ष 2000 में उनके शरीर का दाया भाग लकवाग्रस्त हो गया और उनके पैरालाइसिस अटैक से अपरिपक्व जीवन का अंत हो गया। उनके अंतिम कार्य का नाम 'विसर्जन' (देवी दुर्गा का विर्सजन) था। वह अधूरा ही रह गया। यद्यपि उनके चाहने वालों ने जोर दिया कि वह अपने बाँये हाथ से चित्र करना शुरू कर दें, वे कितने आशावादी थे कि उन्होंने ये आशा रखी थी कि उनका दाँया हाथ काम करेगा। व्हीलचेयर से बंधे हुए पाँच साल के कठिन जीवन के बाद 18 दिसम्बर वर्ष 2006 में उन्होंने अपनी अन्तिम साँस ली। विकास भट्टाचार्जी ने अपने जीवन में ढेर सारे इनाम ज्यादातर श्रेष्ठ कृतियों का ढ़ेरों सराहना जितना कोई सोच भी न सके। वह कला दर्शक व कला समीक्षक कुछ और की चाह में छोड़ गये। वह अपने पीछे हृदयविदारक परिवार का दृश्य, रोते हुए सहकर्मी छात्र जो अब जल्द ही गुरू बनेंगे और उसके बाद छोटा रोमाँचकारी व्यवसाय जो कि पेंटिंग पर समर्पित है।[12]

उनके व्यक्तिचित्र भी अत्यंत प्रभावशाली रहे। उन्होंने इंदिरा गांधी, सत्यजीत राय, रामकिंकर बैज आदि अनेक प्रसिद्ध व्यक्तित्वों के चित्र बनाए। इन चित्रों में केवल बाहरी रूप नहीं बल्कि व्यक्तित्व की आंतरिक संवेदना और भावनात्मक गहराई भी दिखाई देती है। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद बनाया गया चित्र विशेष रूप से मार्मिक माना जाता है। विकास भट्टाचार्य की कला पर बंगाल की सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव था। बचपन की कठिन स्मृतियों, अकेलेपन और असुरक्षा ने उनकी कला को संवेदनशील और तीखा बनाया। उन्होंने लोकजीवन और प्रकृति दोनों से प्रेरणा ली तथा भारतीय समकालीन कला को नई दिशा प्रदान की। उनकी कला देश–विदेश की अनेक प्रदर्शनियों में प्रदर्शित हुई और उन्हें ललित कला अकादमी द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि विकास भट्टाचार्य ने अपनी कला के माध्यम से समाज, समय और मनुष्य की जटिलताओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया। उनकी चित्रकला भारतीय समकालीन कला में सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और कलात्मक प्रयोगधर्मिता का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

संदर्भ

1. साहा (डा0), रणजीत 'विकास भट्टाचार्जी की चित्रभाषा' ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक–31, वर्ष 2006–07, पृ0 सं0–**28**
2. साहा (डा0), रणजीत 'विकास भट्टाचार्जी की चित्रभाषा' ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक–31, वर्ष 2006–07, पृ0 सं0–**28**
3. साहा (डा0), रणजीत 'विकास भट्टाचार्जी की चित्रभाषा' ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक–31, वर्ष 2006–07, पृ0 सं0–**29**
4. साहा (डा0), रणजीत 'विकास भट्टाचार्जी की चित्रभाषा' ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक–31, वर्ष 2006–07, पृ0 सं0–**29**
5. चन्द्रिकेश (डा0) जगदीश, 'अप्रतिम कलासाधक : विकास भट्टाचार्जी', ललितकला अकादेमी, नई दिल्ली, वर्ष 2004–05 पृ0 सं0–**32**
6. चन्द्रिकेश (डा0) जगदीश, 'अप्रतिम कलासाधक : विकास भट्टाचार्जी', ललितकला अकादेमी, नई दिल्ली, वर्ष 2004–05 पृ0 सं0–**32**
7. चन्द्रिकेश (डा0) जगदीश, 'अप्रतिम कलासाधक : विकास भट्टाचार्जी', ललितकला अकादेमी, नई दिल्ली, वर्ष 2004–05 पृ0 सं0–**32**
8. चन्द्रिकेश (डा0) जगदीश, 'अप्रतिम कलासाधक : विकास भट्टाचार्जी', ललितकला अकादेमी, नई दिल्ली, वर्ष 2004–05 पृ0 सं0–**33**
9. चन्द्रिकेश (डा0) जगदीश, 'अप्रतिम कलासाधक : विकास भट्टाचार्जी', ललितकला अकादेमी, नई दिल्ली, वर्ष 2004–05 पृ0 सं0–**25**
10. चन्द्रिकेश (डा0) जगदीश, 'अप्रतिम कलासाधक : विकास भट्टाचार्जी', ललितकला अकादेमी, नई दिल्ली, वर्ष 2004–05 पृ0 सं0–**26**
11. जोशी (डा0), ज्योतिष, 'विकास भट्टाचार्जी को समझने का सार्थक प्रयत्न', ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक 32, वर्ष– 2007, पृ0 सं0–**58**
12. बालाका भट्टाचार्जी से शोध–संदर्भित वार्तालाप।